आश्रम व्यवस्था - एक वैज्ञानिक विभाजन, विवेचन

दिनेश कुमार मील [1]

[1] **सहायक आचार्य, इतिहास, सुजस महाविद्यालय, बनेड़ा, भीलवाड़ा (राज.).**

ABSTRACT:

आश्रम व्यवस्था मनुष्य जीवन को चार भागों में इस प्रकार विभाजित करती है कि पहले वह ज्ञान की प्राप्ति करें, फिर संसार की वास्तविकताओं को भोगे तदन्तर सांसारिक जंजाल से स्वयं को दूर रखकर ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करें और अंत में उसी परम सत्य को खोज कर अपना उत्सर्ग कर उसी में एकाकार होने के लिए प्रयत्नशील हो। यही मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को धीरे-धीरे तैयार करने की सुविचारित योजना ही आश्रम व्यवस्था है।

आश्रम व्यवस्था हिंदू जीवन का एक क्रमबद्ध इतिहास है जिसका कि उद्देश्य जीवन यात्रा को विभिन्न स्तरों में बांटकर प्रत्येक स्तर पर मनुष्य को कुछ समय तक रखकर उसे इस भांति तैयार करना की वास्तविकताओं और प्रयास मय क्रियात्मक जीवन की अनिवार्यताओं में से गुजरता हुआ अंतिम लक्ष्य पर ब्रह्म या मोक्ष को प्राप्त कर सके, इसीलिए मानव जीवन के 100 वर्षों को 25-25 वर्ष के चार भागों में विभाजित कर कर्तव्य पालन हेतु व्यवस्था की गई है।

KEYWORDS:

ब्रह्मचर्यश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम, आश्रम का महत्व।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
28th April 2024	30th April 2024

विषय प्रवेश:-

ब्रह्मचर्याश्रम:-

'ब्रह्मचर्य' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- 'ब्रह्म' तथा 'चर्य'। 'ब्रह्म' का अर्थ है महान तथा 'चर्य' का अर्थ है विचरण करना; अर्थात् ऐसे मार्ग पर चलना जिससे मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से छोटे से महान हो। डॉ. मातृदत्त त्रिवेदी ने लिखा है कि ब्रह्मचर्य का आशय केवल इन्द्रिय निग्रह से नहीं था; अपितु इंद्रिय निग्रहपूर्वक से था, क्योंकि ब्रह्म और वेद दोनों पर्यायवाचक शब्द है- 'ब्रह्मदेव इति श्रुति'।

उपनयन संस्कार के उपरांत बालक जीवन के प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता है। यह संस्कार व्यक्ति को अनुशासित जीवन व्यतीत करने के लिए आमंत्रित करता है उपनयन संस्कार विभिन्न वर्णों में अलग-अलग आयु में करने का निर्देश दिया गया है।

शिष्य उपनीत होकर ब्रह्मचर्य आश्रम में विधिपूर्वक प्रवेश करता है और फिर गुरु उसे ब्रह्मचारी के कर्तव्यों और त्याज्य कर्मों का पाठ सीखाता है और वेदादि का अध्यापन व ज्ञान देना प्रारंभ करता है।

महाभारत के उद्योग पर्व में वर्णित ब्रह्मचर्य के चार चरण शिष्य को गुरु भक्ति की ओर उन्मुख करते हैं। ब्रह्मचर्य के चार चरण अधो लिखित है-

प्रथम चरण- शिष्य के द्वारा नित्य गुरु का अभिवादन किया जाये। शिष्य स्वाध्याय नित्य करें, अभिमान न करें तथा मन को शांत रखें।

द्वितीय चरण- शिष्य अपने मन, वचन, कर्म से, प्राणों से और धन से ही गुरु का हित करें।

तृतीय चरण- गुरु के कार्यों का चिंतन, मनन, अनुसरण करें।

चतुर्थ चरण- शिक्षा समाप्ति के पश्चात आचार्य को दक्षिणा दिए बिना गुरुकुल नहीं छोड़ना चाहिए।

ब्रह्मचर्य के कुछ कर्तव्य भी बताये गए हैं यथा-

* ब्रह्मचारी अनुशासित और संयमित जीवन व्यतीत करें।

* गुरु सेवा उसका प्रथम कर्तव्य माना गया है।

* यज्ञ हेतु संपूर्ण व्यवस्था का उत्तरदायित्व वहन करे।

* ब्रह्मचारी का एक अनिवार्य कर्तव्य भिक्षाटन है।

* ब्रह्मचारी वेद मंत्रों का जप एकाकी करे।

गृहस्थाश्रम:-

ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद आयु का द्वितीय भाग 25 वर्ष से 50 वर्ष का भाग गृहस्थ आश्रम के लिए निर्धारित किया गया है। गृहस्थ आश्रम में रहने वाले गृहस्थी, गृहपति कहलाता है। यह आश्रम चारों आश्रमों में श्रेष्ठ भी कहा गया है क्योंकि इसी आश्रम में धर्म, अर्थ, तथा काम तीन पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।

'ब्रह्मचर्य परिसमाप्य ग्रही भवेत्' अर्थात् ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्थी बने। महाभारत के शांति पर्व में स्वयं महर्षि वेदव्यास लिखते हैं कि धर्मप्रप्त्यनंतर ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें, अग्नि का संरक्षण करें, संतानोत्पति करके गृहस्थव्रती बने। ' ग्रहीणी गृहमुच्यते ' भार्या के साथ घर में निवास करने वाला गृहस्थ कहलाता है। गृहस्थी का प्रमुख कर्तव्य होता है –

• गुणयौवन सम्पन्न कन्या से विवाह करना।

* पितृ ऋण से मुक्ति हेतु सन्तानोत्पति करें।

* गुरु ऋण से मुक्ति हेतु स्वाध्याय - प्रवचन करे।

* प्रतिदिन पंच महायज्ञ - ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ अवश्य संपादित करें।

गृहस्थ को आजीविका के लिए अपने वर्ण के अनुकूल कर्म करना चाहिए। धर्नाजन करके ही वह अपने कर्तव्यों को संपादित कर सकता है। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति उचित माध्यम से जीविकोपार्जन करके स्वयं का, परिवार का, जीव जंतुओं का तथा समाज का भरण पोषण करते हुए सत्यनिष्ठा, सदाचार तथा अनुशासन का पालन करते हुए अनुशासित जीवन व्यतीत करता है। गृहस्थ को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि यमों का पालन करना चाहिए। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय आदि नियमों का भी श्रद्धापूर्वक पालन करना चाहिए। गृहस्थ के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है -

* गृहस्थ व्यक्ति के लिए दिन में सोने का निषेध किया गया है।

* रात्रि के पहले प्रहर में तथा अंतिम प्रहर में सोने का भी निषेध है।

* प्रातः भोजन करें तथा सायंकाल भोजन करें। इसके अतिरिक्त मध्यान में भोजन न करें।

* गृहस्थ किसी की निंदा ना करें।

* अहंकार कदापि न करें।

* हिंसा ना करें, अपनी उपलब्धियां के प्रति आसक्त न हो।

महर्षि वेदव्यास ने गृहस्थ आश्रम के लिए लिखा है -

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।

एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमः।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम ।

एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिमे ।

अर्थात् सभी जीव जंतु मां का आश्रम पाकर जीवित होते हैं। वैसे ही गृहस्थाश्रम का आश्रय पाकर अन्य आश्रम विद्यमान हैं। जैसे समस्त नदी नाले सागर में जाकर आश्रय पाते हैं। वैसे ही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी भी गृहस्थ के यहां आकर आश्रय पाते हैं।

वानप्रस्थ आश्रमः-

मानव जीवन की तृतीय आयु में पालन किया जाने वाला आश्रम है - वानप्रस्थ आश्रम। वानप्रस्थ को प्राचीन युग में वैरवानस के नाम से भी जाना जाता था। वानप्रस्थ का अर्थ है - वन की और प्रस्थान करना **वनमेव प्रस्थः वानप्रस्थः। वने प्रकर्षण नियमेन च तिष्ठतीति वनप्रस्थ तस्य भावः वानप्रस्थः।**

नियम पूर्वक वन में निवास करना ही वहां प्रस्तुत है। वानप्रस्थी सदैव अग्नि को अपने साथ रखता है। उसे भी पंचमहायज्ञ करने की अनिवार्यता बताई गई है। गृहस्थाश्रम में धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ, दानादि करके भी कदाचित मनुष्य अपने पितृ, ऋषि आदि ऋणों को नहीं चुका पाता है।अतः वानप्रस्थ में भी यज्ञ की अनिवार्यता है।

एक गृहस्थी को अपने सांसारिक दायित्वों को पूर्ण करके धन अर्जनादि के दायित्व से निवृत होकर, ऋणमुक्त होकर, गृहस्थी का भार पुत्र के कंधों पर डालकर सभी प्रकार के कर्त्तव्य समाप्त करके वानप्रस्थ को गमन करना चाहिये। पत्नी को साथ लेकर या छोड़कर भी वानप्रस्थ को गमन किया जा सकता है। अकेली पत्नी भी वानप्रस्थ को जा सकती है, यथा - महाभारत में स्वर्गीय महाराज पाण्डु की भार्या कुन्ती अपने ज्येष्ठ धृतराष्ट्र तथा उनकी भार्या गांधारी के साथ वन को गई थी। एक वानप्रस्थी के कुछ कर्तव्य बताए गए हैं-

• वानप्रस्थी अन्न, शाक, मूल, फल से ही पंचमहायज्ञों का विधिपूर्वक विधान करे।

* मृगचर्म अथवा वल्कल वस्त्र पहने, प्रातः सांय स्नान करे, नख केश कर्तन नू करे, स्वाध्याय करे, जितेन्द्रिय बने, सर्वमित्र समभाव रहे, संयमित रहे, दान व दया का भाव रखे।

* विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र का अनुष्ठान करे, हवनादि करे, शयन करे, ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तप करे इन सब नियमो के पालन से होने वाली प्राप्ति के लिए महाभारत के शान्तिपर्व में महर्षि वेदव्यास ने बताया है –

कर्मभिस्ते निरानन्दा धर्मनित्या जितेन्द्रियाः।

गताः प्रत्यक्षधर्माणस्ते सर्वे वनमाश्रिता : ।।

अनक्षत्रास्वनाधृष्या दृश्यन्ते ज्योतिषां गणाः।।

अर्थात् - सप्तत्रऋषि मण्डल, अगस्त्यादि ऋषि तथा ब्राह्मण लौकिक सुखो से दूर रहकर व्रत, उपवास आदि तप करके, धर्मपरायण रहकर जितेन्द्रिय बनकर धर्मजिज्ञासु रहते हुए वानप्रस्थियों के नियमो का यथा विधि पालन करते थे, इसी अनुशासित तथा तापसी जीवन शैली के कारण वे आकाश मण्डल में ज्योतिर्मय तारों के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त कर चुके है। अतः वानप्रस्थ में अनुशासित आचरण प्रतिष्ठित पद प्राप्ति में सहायक है।

सन्यास आश्रमः-

आश्रम व्यवस्था का अंतिम तथा अत्यंत महत्वपूर्ण आश्रम है। शंतायु जीवन के अन्तिम पच्चीस वर्ष संन्यास हेतु निर्धारित किये गये है। ब्रह्मचारी कभी-कभी किसी अन्य आश्रम में (गृहस्थ व वानप्रस्थ) प्रवेश किये बिना ही सीधे संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाते थे तथापि सोपान पर क्रमशः आरोहण ही श्रेयस्कर कहा गया है।

संन्यास का अर्थ है- सम्यक त्याग अर्थात् जहाँ मनुष्य पूर्णतया भौतिकता से विरक्त हो जाता है। भगवद्गीता के अनुसार कर्म द्विधा परगणित है। काम्य कर्म तथा कर्तव्य कर्म का पूर्णतया परित्याग तथा सर्वविध परित्याग संन्यास है-

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।

सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥

सन्यासाश्रमोचित कर्मो को विधिपूर्वक करने वाला सन्यासी कहलाता है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्य कर्म करोति यः।

स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाडक्रियः।

प्रारंभिक तीन पुरुषार्थ मनुष्य को अर्जित करके मनुष्य को फिर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिये। देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण से मुक्त होकर ही संन्यासी को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होना चाहिये और इन तीन ऋणो से प्राप्त मुक्ति ब्राहमचर्य से लेकर वानप्रस्थः तक क्रमशः हो जाती है। एक आश्रम से दूसरे तीसरे व क्रमशः चौथे में प्रवेश करते हुए मनुष्य जितेन्द्रिय, दानी, कर्मशील, धैर्यशील तथा संयमी बन जाता है और आश्रमोचित्त कर्म करते हुए विभिन्न ऋणो से मुक्त होकर संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होता है। विभिन्न धर्मग्रन्थों में संन्यासी के अनेक कर्तव्य बताए गए हैं-

* वह समस्त भूतो को अभय प्रदान करे।

* एकान्तवास करता हुआ तपस्यारत हो तथा मोक्ष चिन्तन के अतिरिक्त कोई चिन्तन न करे।

* जितेन्द्रिय रहे, विषयों के प्रति मानसिक आसक्ति भी न रखें।

• लौकिक अग्नि को अपने साथ न रखे।

* भिक्षा के लिए कपाल का आश्रय ले।

* सन्यासी को अंधेरे में गमन नहीं करना चाहिये। सत्य अहिंसा, अनिंदा, अदोषता, माधुर्य, सौम्यता आदि गुणों से युक्त प्राजंल वाणी बोलनी चाहिये।

आश्रम का महत्वः-

भारतीय समाज - दृष्टाओ ने जीवन की अनिवार्यत आवश्यकता की वैज्ञानिक व्यवस्था को आश्रम व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया था। ब्रहमचर्याश्रम को आश्रम व्यवस्था का प्रवेशद्वार माना गया है, जिसके अन्तर्गत बालक समस्त सांसारिक आर्कषणों से दूर रहकर गुरु के आश्रम में, इन्द्रियों पर कठोर नियंत्रण रखता हुआ ज्ञानार्जन करता है; गृहस्थाश्रम में देव ऋण व ऋषि ऋण के साथ-साथ पितृ ऋण से उऋण होने के लिये प्रेरित होता है। वानप्रस्थाश्रम में व्यक्ति पुनः इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने का अभ्यास करते हुए एक ओर अपनी घटती हुई शक्ति को स्थिर रखने का अभ्यास करता है। दूसरी ओर संचित अनुभव को उपदेश और अध्ययन द्वारा समाज को प्रदान करता है।

जीवन के अंतिम दिनों में संन्याश्रम में इन्द्रिय दृष्टि से पूर्ण संयमित व्यक्ति उस मोक्ष की साधना में लग जाता है जो कि जीवन व आत्मा को समुन्नत बना उन्हें उसके परम प्राप्य और परम अधिगन्तव्य 'पद' पर पहुंचाने में सहायक होता है। आश्रम व्यवस्था का यही व्यवहारिक महत्व है।

वैज्ञानिक दृष्ट्रिकोण से देखते है तो हम यह पाते है कि व्यक्ति की आयु 100 वर्षो का मानकर उसके विभाजन का आधार मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, समाजशास्त्रीय रूप से इस प्रकार तय किया गया है कि व्यक्ति जीवन के 10 वर्ष से 25 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण करे तत्पश्चात् शारीरिक रूप से सक्षम होकर अपनी आजीविका कमाते हुऐ अपने परिवार का सृजन करे, उसका पालन पोषण करे, अपने सामाजिक कर्त्तव्यो दायित्वों का भली भांति निर्वहन करे तत्पश्चात् अपनी आयु के संचित अनुभवों से समाज को लाभान्वित करते हुए स्वाध्याय करे, जीवन के अंतिम वर्षो में सांसारिकता से विरक्त रहते हुऐ अपने आप को मोक्ष मार्ग पर पूर्णतः सर्मर्पित कर स्वंय का कल्याण कर अपने जीवन को धन्य कर दे। यह वैज्ञानिक विभाजन इतना सुन्दर और सजीव है कि इसे धार्मिकता, सामाजिकता के ताने बाने के ईर्द गिर्द बुना गया जिससे व्यक्ति को अपने उत्तरदायित्व बोझ नहीं लगे और व्यक्ति उन्हें खुशी-खुशी पूर्णः भी करता जाये।

सारांशः-

आयु के जिस पड़ाव में मनुष्य को जिस प्रकार के कर्म करने चाहिये अथवा जैसी मनोवृत्ति रखनी चाहिये, उसी के अनुसार इन चारो आश्रमो की संकल्पना की गई है। इनके कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था की गई है जिससे सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से चल सके।

मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष माना गया है। उस परम तत्व को प्राप्त करने के लिए भारतीय संस्कृति में आश्रम रुपी सोपान रचे गये है जिन पर अग्रसर होता हुआ व्यक्ति परम गति को प्राप्त करता है।

चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता।

एतामारुह्य निःश्रेणी बहालोके महीयते ॥

REFERENCES

1. पी.वी. काणे :- धर्मशास्त्र का इतिहास
2. डॉ किरण टण्डन :- भारतीय संस्कृति
3. प्रो० वाई. एस. रमेश :- भारतीय संस्कृति